अध्याय आठवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढाय नमः॥

"जो अनेक शब्दों का जाल बुने बिना केवल तर्कशास्त्र का उपयोग करके स्वरूप देखकर (आत्मदृष्टि से) ब्रह्म प्राप्ति कर लेते है, जो सदा ही बहुतों में एक ही आत्मा का निवास देखते है, ऐसे सिद्धनाथजी को मैं प्रणाम करता हूँ।"

साक्षात् भगवान के समान हुए श्रीसिद्धारूढ़जी भक्तों पर विविध प्रकार से कृपा करते हैं, उसी प्रकार अभक्तों के आत्मा पर पड़े अज्ञान का पटल क्षण में दूर करते हैं। ऐसे लोगों के मन में स्थित भेद की भावना का विनाश करके, उन्हें अभेद बुद्धि प्रदान करके, उन्हें सभी संकटों से बचाकर भक्तिमार्ग दिखाते हैं। अस्तु। पिछले अध्याय में ब्राह्मण का रोग निवारण करके तथा उसे पंचाक्षरी मंत्र का उपदेश देकर दयाघन सिद्धारूढ़ महाराजजी आगे निकल पड़ने की कथा आपने पढ़ी है। केदारघाट पर केदारेश्वर का शिवलिंग दर्शन करने के बाद वे तेजी से जंगमवाड़ी गये और वहाँ से मणिकर्णिका मंदिर पहुँचे। उसके पश्चात अन्न्पूर्णादेवी के दर्शन करके आगे सुराभांडलिंगगृह के दर्शन किए। उसके बाद ब्रह्मघाट जाकर वहाँ उन्होंने गंगाजल प्राशन किया। तत्पश्चात दशाश्वमेध घाट जाकर वे मंदिर में बैठे। वहाँ बैठकर सिद्धारूढ़जी मन में सोचने लगे की इसी जगह पर प्रजापति ने दस अश्वमेध यज्ञ करने के कारण 'दशाश्वमेध' इस नाम से यह घाट सुप्रसिद्ध हुआ। प्रजापति मुझसे भिन्न नहीं है। संपूर्ण प्रजा की उत्पत्ति के लिए मैं स्वयं ही कारण हूँ। इस प्रकार चिंतन करते हुए जीवन की सर्वसाधारण वृत्तियाँ शांत करने के लिए पलभर वे वहीं चुपचाप बैठे रहे।

उस समय, जहाँ सिद्धनाथजी बैठे थे वहाँ महादेवशास्त्री नाम की एक प्रख्यात व्यक्ति अपने छप्पन शिष्यों को लेकर उन्हें पढ़ाने पहुँचे। शास्त्रीजी ने वहाँ शिष्यों को न्यायशास्त्र पढाना आरंभ किया और उस संदर्भ में उन्होंने न्यायसूत्र में दिया हुआ एक श्लोक सुनाया, "द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्तपदार्थाः॥ तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव॥ रूपादिचतुर्विंशतिगुणाः॥ उत्क्षेपणादि पंचकर्माणि॥ सामान्यं व्दिविधं विशेषास्त्वनंता एव॥ समवायस्त्वेक एव॥ अभावश्चतुर्विधः॥ तत्र गंधवार्ता पृथ्वी॥ सा व्दिविधा॥ नित्यानित्या च॥

नित्या परमाणुरूपा॥ अनित्या कार्यरूपा॥ पुनस्त्रिवधा॥ शरीरेंद्रिय विषयभेदात्॥ शरीरभस्मदाहीनां इंद्रियं गंधग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ती विषयो मृत्पाषाणादि:॥" इसप्रकार न्यायशास्त्र के बारे में शास्त्रीजी ने बोधना आरंभ किया, इतने में जगन्नाथशास्त्री नाम के एक पंडित उनके बहत्तर शिष्यों समेत वहाँ आये। वे गौतम ऋषि ने लिखे हुए न्यायशास्त्र के अनुसार न्याय क्या होता है यह स्पष्ट रूप से बताने लगे, "इस न्यायशास्त्र में प्रमाण, प्रमेय, दृष्टांत, संशय, प्रयोजन, सिद्धांत, तर्क, निर्णय, अवयव, वादवितंड, जल्प, हेत्वाभास, स्थान, स्थान, फल, जाति और निग्रह ये सोलह पदार्थ (विषय) होते हैं।" उसपर वे उन सोलह पदार्थों के लक्षण बयान करने जा रहे थे की महादेवशास्त्री चिल्लाने लगे, "भाई, न्यायशास्त्र में केवल सात ही पदार्थ होते हैं," जगन्नाथजी ने कहा, "सोलह पदार्थ होते हैं," महादेवशास्त्री बोले, "'तत्वज्ञानान्नि: श्रेयसाधिगम: इति न्यायशास्त्रनिरुपिते तस्मात् कथं सप्तैव इति दृष्टे सति' आप जो सोलह पदार्थों की चर्चा कर रहे हैं, उनका समावेश इन सातों में ही होता है।" इस प्रकार दोनों में वादविवाद बढ़ता हुआ देखकर सिद्धनाथजी मन ही मन कहने लगे की अगर ये दोनों अशाश्वत वस्तुओं के बारे में सोचते रहें तो शाश्वत वस्तु इन्हें कभी भी प्राप्त नहीं होगी; अब क्या करें? अब किसी भी तरह से इन लोगों के मन शाश्वत वस्तु की ओर निश्चित रूप से मोडने चाहिए। इस प्रकार विचार करके सिद्धनाथ बोले, "हे सदबुद्धिवाले पंडितों, जरा सुनिए, जब आप द्रव्य और गुणों के बारे में विचार करते हैं तब उन वस्तुओं के रूप से एकरूप होते हैं या भिन्न ही रहते हैं? उन वस्तुओं के रूप से एकरूप होना यह निश्चित ही अनुचित है क्योंकि द्रव्य तथा गुण ये जड़ हैं परंतु आप में स्थित चेतना शक्ति (आत्मा) यह निश्चित ही उन जड़ वस्तुओं से भिन्न है। आप के जड़ तथा भिन्न शरीर में होने वाली चेतना और ब्रह्मचेतना ये दोनों वस्तुएँ अभिन्न हैं। हे पंडितों, अगर ऐसा न होता, तो, वह कथन (अभिन्नता के बारे में किया हुआ) वेदों में प्रयोग किये हुए 'एकमेव' इस शब्द के विरूद्ध होगा। अगर आप कहेंगे की यह अभेद या एकरूपता केवल संपूर्ण ज्ञानप्राप्ति के पश्चात ही संभव है, तब तो पूर्ण रूप से प्राप्त किया हुआ ज्ञान व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि यह अभिन्नता अखंड तथा निरंतर ही समझनी चाहिए। अभेद का यह ज्ञान निरंतर होकर असहाय

मनुष्य को पूर्ण रूप से मोक्षद है।" पंडितों ने कहा, "कर्म की उपासना की सहायता से ज्ञान तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं ऐसा कहा जाता है. उसके बारे में आपकी क्या राय हैं?" सिद्धनाथजी ने उत्तर दिया, "वेदों में कहा गया है, 'ज्ञानादेव तु कैवल्यं' इस वचन में दिये 'एव' इस पद का अर्थ 'मोक्षप्राप्ति' होता है और वह ज्ञानप्राप्ति से ही होती है, यह भी निश्चित है। इस वचन में दिये हे 'तु' पद का अर्थ होता है की अन्य सभी जड़मूढ उपासनाएँ मोक्षप्राप्ति के लिए व्यर्थ होते हैं। इसलिए, सिद्धांत यह है की, केवल ज्ञानप्राप्ति से ही मोक्षप्राप्ति (कैवल्यं) होती है।" सिद्धगुरुजी का बोल सुनकर शास्त्रीजी अभिमानरहित होकर बोले, "इन्हें तो पूर्ण रूप से आत्मानुभव (आत्मज्ञान) प्राप्त हुआ है. इनके सामने हमारे तर्क वितर्क व्यर्थ है क्योंकि हमारा ज्ञान तो केवल शब्दपांडित्य (तोटारटंत) है, हमने स्वयं आत्मानुभव के फल चखे ही नहीं।" उसपर वे सभी हाथ जोडकर सिद्धनाथजी से बोले, "हे स्वामीजी, आपके शब्द त्रिकाल सत्य हैं। अब आप हमें दीक्षा देकर उपदेश दीजिए।" सिद्धनाथजी ने कहा, "यह पवित्र स्थान तारक उपदेश देने योग्य है। आप पंडित लोग कुलगोत्र का (श्रेष्ठ कनिष्ठ) विचार छोड़कर सब को इकट्ठा करके शास्त्रार्थ (धर्मचर्चा) कीजिए। वेदों का कर्ता जो श्रीशंकर भगवान है, उसका भी यही अभिमत (राय) है।" यह सुनकर सब लोग सिद्धानाथजी को प्रणाम करके हर्षित होकर चले गये। वे दोनों शास्त्री अपने अपने शिष्यों समेत लौटने के पश्चात उनमें से तीन शिष्य तुरंत लौटकर आये और उन्होंने सिद्धानाथजी से पूछा, "इस प्रकार आपका ब्रह्मोपदेश करना हमें निश्चित ही अच्छा नहीं लगा। गोपनीय तथा अनसुने वाक्य (बात) से मन नष्ट होता है। मन में सद्भाव उत्पन्न नहीं होता।" यह सुनकर दयाघन सतगुरुजी ने पूछा, "बताईए की मन लय हो जाता है ज्ञान? ज्ञान कभी भी लय नहीं होता। शून्यवाद (शून्यवाद: नास्तिकवाद) में ज्ञान की कमी है यह जानकर आप ज्ञान का लय होता है ऐसा कह रहे हैं। इससे ज्ञान का सद्भाव ही पूर्ण रूप से स्थापित होता है।" उसपर वे शिष्य बोले, "आपकी बात करने का तरीका देखकर सुनने वाले को ऐसा लगता है की कोई गरीब कह रहा हो की, 'मैं स्वयं ही राजा हूँ' (कहने का भावार्थ यह है की, अपने पास कुछ भी न होते हुए भी सबकुछ है इस प्रकार की गलतफहमी में रहने वाले लोग)।" तब सिद्ध यतिवर्य ने कहा,

"आपका कहना सुनकर ऐसा लगता है की पित्त के रोग से ग्रस्त हुआ कोई राजा कह रहा हो की, 'मैं सचमुच ही एक तालेबर (धनिक) हूँ' (इस का अर्थ होता है की राजा को वह स्वयं बहुत धनवान होने का पित्त रोगग्रस्त होने के कारण विस्मरण हुआ है। अर्थात अज्ञानवश साधारण मनुष्य को अपने स्वरूप का विस्मरण हुआ है।) इस प्रकार के भ्रम में आप हैं।" तब उन्होंने कहा, "इसका अर्थ यह हुआ की अगर आपकी स्थिति एक प्रकार की है तो हमारी स्थिति पूर्ण रूप से भिन्न है।" सिद्धनाथजी ने कहा, "हम लोगों की स्थिति में कोई खास भिन्नता नहीं है। आत्मा तो एकसमान ही है। जिस प्रकार अँधेरा या प्रकाश इन दोनों से आकाश अलिप्त ही होता है, उसी प्रकार आत्मा निर्मल होती है।" यह सुनकर वे शिष्य बोले, "हमें इस का अनुभव नहीं हो रहा है। पढ़ाई करके (विद्याप्राप्ति) पांडित्य प्राप्ति से क्यों मन को अनुभव नहीं (आत्मानुभव) होता, यह बताईए।" उसपर सिद्धारूढ़जी ने कहा, "सच्चाई तो यह है की इस प्रकार का पांडित्य यह अहंकार का कारण है। ऐसे पांडित्य का घमंड करने वाले अगले जन्म में ब्रह्म राक्षस होते हैं।" उनकी बात सुनकर अत्यंत भयभीत हुए वे शिष्य बोले, "अगर ऐसा है तो न्यायशास्त्र का पठण छोड़कर हम आपके चरणों में शरण ले लेंगे। आपके शरणार्थी होने से आपके आशिर्वाद से हमें अति शीघ्र ब्रह्मस्थिति हो जाए।" सिद्धनाथजी ने कहा, "अगर आपके मन में भाव शुद्ध होगा तब ईश्वर की कृपा से आपकी मनोकामना पूरी हो जाए।" यह बात सुनकर हर्षित होकर वे अपने घर जाने के लिए निकल पड़े।

उस के बाद सिद्धनाथजी वहाँ से अहल्याघाट की ओर निकल पड़े। वहाँ पलभर विश्राम करने के पश्चात उन्होंने नारदघाट, चौसतीघाट और पांडेश्वरघाट देखे। वहाँ से वे महास्मशानघाट गए और वहाँ उन्होंने शिवजी के मंदिर में श्रीशंकर भगवान की मूर्ति के दर्शन किये। उसके बाद यक्षराजघाट जाकर वहाँ वे कुछ देर तक बैठे रहे। उसके बाद वे नंगाघाट गए, वहाँ एक नंगे साधु ने उन्हें पूछा, "वस्त्र धारण करने वालों को केवल चिंताएँ सताती हैं परंतु कोई सुख नहीं मिलता। अगर आप सच्चे साधु है तो व्यर्थ में क्यों आप वस्त्र धारण कर रहे हैं?" सिद्धनाथजी ने उत्तर दिया, "वस्त्र धारण करना आप के लिए वर्ज्य है, परंतु इंद्रिय तथा उनकी भोगवस्तुएँ संयुक्त होने से सुख तथा दुख प्राप्त होता है

या नहीं?" उसपर वह नंगा बैरागी बोला, "तनिक मेरी बात तो सुनिए। इस लौकिक जगत में प्रारब्धभोग तथा सहनशीलता के अनुसार हर एक मनुष्य को सुख तथा दुख सताते रहते हैं।" उस समय सिद्धारूढ़जी ने कहा, "यह सहनशीलता यहीं तो एक उपासना है। इस सहनशीलता के बिना वस्त्र वर्ज्य करना या न करना किस काम का? सुखोपभोग करते हुए उपासना नहीं हो सकती।" तब बैरागी ने कहा, "ऊपरी तौरपर यह साधु पागल लगता है परंतु वह पूर्ण रूप से ज्ञानसंपन्न है।" ऐसा कहते हुए वह नंगा बैरागी वहाँ से चला गया और अवधूत भी निकल पड़े। तत्पश्चात वे व्यास महर्षी की काशी कहलवाने वाले रामनगर में पधारे और जाकर एक तालाब के किनारे बैठ गये। एक पल भर वहाँ बैठे ही थे की मंदिर का पुजारी वहाँ आया। सिद्धारूढ़जी को देखकर वह बोला, "इसका पेट पीठ से चिपका हुआ देखकर मुझे ऐसा मालूम हो रहा है की इस अतिथि को कई दिनों में अन्न नहीं मिला होगा।" यह सुनकर सिद्धारूढ़जी के मन में विचार आया की पहले एक बार व्यास मुनी तीन दिन काशी में भूखे रहें थे और इसलिए उन्होंने काशी को तुच्छ समझने के कारण श्रीविश्वेश्वरजी ने उन्हें उसी पल काशी छोड़कर बाहर निकल जाने का शाप दिया था। मेरी भी स्थिति कुछ ऐसी ही हो गयी है। मुझे भी काशी में तीन दिन पूर्ण रूप से भूखा रहना पड़ा और अब काशी छोडकर बाहर आते ही पारण हो जायेगा ऐसा प्रतीत हो रहा है।

सेवक के समान प्रारब्ध जो भी प्रदान करता है, उसे स्वेच्छा से स्वीकार करना है। इस प्रकार मन में विचार करते हुए संदेहरहित होकर सिद्धारूढ़जी बैठे हुए थे। उनका आनंदित चेहरा देखकर पुजारी ने पूछा, "हे अतिथि, आप कौन है?" सिद्धारूढ़जी ने कहा, "जों तुम स्वयं ही हो ऐसी वह शाश्वत और परिपूर्ण (आत्मा) मैं ही हूँ।" उसपर पुजारी ने पूछा, "क्या आप भोजन करेंगे?" सिद्धानाथजी ने उत्तर दिया, "अगर आप भोजन देंगे तो मैं अवश्य उसका स्वीकार करुँगा।" सिद्धानाथजी की बात सुनते ही पुजारी ने उन्हें अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। तब सिद्ध बोले, "अतिथि को घर बुलाकर अन्न देने से थोडी पुण्यप्राप्ति होती है, परंतु जहाँ अतिथि हो वहीं ले जाकर उसे भोजन अर्पण करने से देने वाले को महान पुण्यप्राप्ति होती है।" यह सुनकर

पुजारी घर गया और पकवान लेकर वापस आया। तत्पश्चात दोनों ने भरपेट भोजन किया तथा उन्होंने औरों को भी अन्न देकर तृप्त किया। वहाँ से पंचक्रोशी का तीर्थ करने हेतु सिद्धनाथजी निकले। राजा जनक ने स्थापन किये हुए कर्दमेश इस पहली जगह वे पहुँचे, दूसरी जगह पर उन्होंने भीमचंडीदेवी के दर्शन लेकर गंधर्वसेनलिंग तथा पश्चिमेश आदि स्थान देखें। तीसरे तीर्थ में अयोध्यापति रामषडायतन देखकर चौथे तीर्थ में पांडवों की मूर्तियाँ देखने के पश्चात वे आगे निकले। उसके बाद पाँचवे तीर्थ पहुँचकर वहाँ कपिलधारा इस पवित्र तीर्थ में स्नान करके सिद्धकरी आदि शिवलिंगों के दर्शन करने के बाद उन्होंने स्वर्गफलदायिनी के भी दर्शन किये। वहाँ से आगे उन्होंने सिवरान लिंगदर्शन तथा निर्वाश्या सर्वसुंदरी इनके दर्शन करने के पश्चात बुद्धि, स्वधा, स्वादा और महानिद्रा आदि शक्तिगणों के दर्शन किये। इस प्रकार पंचक्रोशी का तीर्थाटन पूर्ण करके वे एक जगह जा बैठे। वहाँ एक सज्जन ने सत्तू (का आटा) लेकर जाते समय सिद्धनाथजी को देखा। उसने दोने में सत्तू, दही तथा नमक मिलाकर सिद्धनाथजी को दिया और उन्होंने तीनों पदार्थ सानकर खाये। तत्पश्चात वे प्रयाग क्षेत्र गये। उस समय वे मन ही मन कहने लगे की जिनके पास तीर्थाटन करने की बिलकुल शक्ति न हो वे अगर इन परमात्मवाचक तीर्थों के नाम भी प्रेमपूर्वक गायें, तो वे स्वयं परमात्मस्वरूप हो जाएँगे। प्रयाग तीर्थ में उन्होंने काँवरियाँ भरके लेनेवाले तथा रामेश्वर से शिवलिंग लाकर प्रयाग के जल में उनका विसर्जन करनेवाले यात्रियों को देखा। यह देखकर सिद्धनाथजी ने विचार किया की ऐसे सभी कर्मों से ईश्वर से प्रेम हो जाता है, जिसके प्रसाद से भोग्य कर्मों का विनाश होता है, तत्पश्चात ज्ञानप्राप्ति का अधिकार मिलता है। उसके बाद सिद्धनाथजी ने किले में प्रवेश करके संगमनाथ के दर्शन किये और अक्षयवटवृक्ष की जड देखकर वे मोगलसराई के लिए निकल पड़े। गाँव में सिद्धनाथजी अभी प्रवेश कर ही रहे थे की आकाश में बादल छाये और मुसलधार वर्षा होने लगी।

उस समय वह महात्मा एक साहूकार के घर जाकर पलभर बैठा ही था की पहरेदार ने उन्हें पूछा, "इस घर क्यों आकर बैठे हो?" अवधूत ने उत्तर दिया, "क्योंकि यह एक सराय है|" उनकी बात सुनकर उसने कहा, "तुम मूर्ख हो, इस

घर में एक साहूकार रहता है।" उन दोनों का संभाषण सुनकर साहूकार बाहर आया और उसने सिद्धनाथजी से पूछा, "किस कारण इस घर को सराय कहकर तुम लड़ रहे हो?" उसपर सिद्धनाथजी ने उसे पूछा, "इस घर में फिलहाल कौन रहता है?" साहूकार ने कहा, "मैं रहता हूँ।" सिद्धजी ने फिर पूछा, "तुम्हारे जन्म से पूर्व इस घर में कौन रह रहे थे?" मालिक ने कहा, "मेरा बाप।" "उस से पहले इस घर में कौन रहता था?" सिद्धजी ने पूछा, "मेरे दादाजी रहते थे," साहुकार ने बताया। उस पर सिद्ध यतिवर्य ने कहा, "इस का अर्थ यह हुआ की इस घर में अनेक लोग रह चुके हैं। एक के जाने के पश्चात दूसरा आता था। अगर हर एक की आयु एक दिन की समझ ली जाए तो हर एक मनुष्य एक एक दिन के लिए इस घर में रहने के बाद घर छोड़कर चला गया। इसीलिए मैं इसे सराय समझ रहा हूँ, ऐसा जान लो।" उनकी बातें सुनकर साहूकार मन ही मन दंग रह गया और बोला की निश्चित ही यह एक महात्मा है और इस की कृपा से मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। पश्चात्तापपूर्ण होकर वह सिद्धानाथजी के चरणों में गिर गया। बाद में उसने अति विनम्र भाव से वह सिद्धनाथजी को अंदर ले गया और बैठने के लिए उन्हें आसन दिया। उसके पश्चात उसने सतगुरुजी की षोडशोपचार पूजा की और समस्त परिवारवालों के साथ उनको प्रणाम किया। उस साहूकार की माताजी का पेट तथा पसलियाँ किसी रोग से दर्द करती थी। तीन महीनों से वह उस रोग को झेल रही थी। तब साहूकार ने सिद्धनाथजी से माताजी का रोग निवारण करने की प्रार्थना की। सिद्धजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। तुरंत साहूकार सिद्धनाथजी को रोग से कराहने वाली लेटी हुई अपनी माताजी के पास ले गया। सिद्धजी ने उसे देखा और कहा, "निश्चित ही यह पूर्वजन्म के गहन कर्म का फल है। परंतु यह व्यथा शिवजी की ध्यानधारणा तथा शिवमानसपूजा करने से आसानी से नष्ट हो जायेगी। अन्यथा किसी महात्मा का चरणामृत पिने से इस कर्म का प्रायश्चित हो जाएगा जिस से निश्चित ही इस रोग का निवारण हो जायेगा, यह तुम समझ लो।" यह सुनकर वह साहूकार आनंदित होकर बोला, "आप स्वयं ही एक महात्मा के रूप में हमें प्रसन्न हुए हैं, इसलिए आपका चरणामृत माताजी को पिलाते ही वह तुरंत रोगमुक्त हो जायेगी।" ऐसा कहकर उसने तत्काल सतगुरुजी का चरणामृत माताजी के मुँह में डाल दिया। उसी पल

उस की व्यथा दूर होकर वह उठ बैठी और उसने सिद्धनाथजी को प्रणाम किया। तब उसने कहा, "हे गुरुनाथजी आपके चरणकमलों का प्रसाद तथा आपकी कृपा से मेरी व्यथा दूर होकर मैं धन्य हो गयी।" साहूकार ने सिद्धारूढ़जी को आसन पर बिठाकर उन्हें पकवान का भोजन कराया, सिद्धजी ने थोड़ा सा भोजन करके हाथ धो लिये। रात को सोने के लिए साहूकार ने सतगुरुजी के लिए मुलायम बिस्तर बिछाया। सिद्धारूढ़जी ने मन में सोचा की ये सारे सुख तथा उपभोगों का झंझट मुझे बिलकुल नहीं चाहिए। सीधासादा भोजन, जमीन या गढ्ढे रोडों पर सोना, चप्पलों के बिना चलना इसी प्रकार का जीवन मुझे पसंद है। तभी सुख तथा दुख के बारे में अपनेआप ही समभाव उत्पन्न होता है, जिससे दुख का त्याग करने से सुख मिलता है। तड़के उठकर सिद्धानाथजी किसी को कुछ कहे बिना बाहर निकले और गया की दिशा में चलते समय मार्ग में मिले एक शिवजी के मंदिर में आनंदित होकर बैठे। श्रीसिद्धारूढ़जी का जीवन चरित्र अजीबोगरीब घटनाओं से भरा हुआ होकर, जिसे पढ़ने से कान पवित्र होते हैं तथा अणुमात्र भी पाप शेष नहीं रहता, ऐसा यह जीवन चरित्र पुण्यदायक है। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह आठवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणोंमें अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥